**International Journal of Humanities and Social Science Research**
**www.socialsciencejournal.in**
**ISSN: 2455-2070**
**Received: 30-10-2021, Accepted: 15-11-2021, Published: 30-11-2021**
**Volume 7, Issue 6, 2021, Page No. 67-70**

# वेदों में पर्यावरणीय संचेतना

**डॉ. धर्मेन्द्र यादव**
अतिथि प्रवक्ता, इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुणीधार, मानिला, अल्मोड़ा, उत्तराखंड, भारत

**सारांश**
भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का शुभारम्भ वनों से ही हुआ है। इसी कारण हमारी प्राचीन संस्कृति 'आरण्यक संस्कृति' के नाम से जानी जाती है। पर्यावरण संरक्षण प्राचीन काल से हमारी संस्कृति का एक अटूट अंग रहा है। इसका मूल आधार प्रकृति पर हमारी निर्भरता एंव उसके प्रति हमारा सम्मान है। वेदों में स्थलीय पर्यावरण, जलीय पर्यावरण एवं वायवीय पर्यावरण के संरक्षण और उसके दूषित होने पर सुधार करने की विधि और प्रेरणायें दी गयी है। पृथ्वी में विद्यमान, पृथ्वी से उपजने वाली और पृथ्वी की विकारभूत सभी वस्तुओं का संरक्षण तथा संशोधन आवश्यक है। जल के महत्व का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि जल ही जीवन है। इस जल को बनाये रखने और नष्ट न होने देने तथा उसके शुद्धीकरण का सदा ध्यान रखना चाहिए। इसी प्रकार वायुमण्डल के शुद्धीकरण पर जोर दिया गया है। वेदों में यह उल्लेख किया गया है कि मनुष्य अपने प्रयासों से वायु, जल तथा औषधीय–वनस्पति को इतना शुद्ध रखें कि वे माधुर्य की धारा बहाया करें और उनके संसर्ग में रहने वाले मनुष्य समेत समस्त जीव–जन्तु सुख और शांति का अनुभव करें। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण सुरक्षा एवं संतुलन को धार्मिक आधार प्रदान कर, उसे हमारे जीवन के अनिवार्य अंग के रूप में उल्लेख किया गया है। पर्यावरण से सम्बन्धित सभी तत्वों, वन एवं वनस्पतियों को देवत्व का अंश बताकर उनके प्रति न केवल आदरभाव प्रदर्शित किया गया तथा पर्यावरण सुरक्षा को सुनिश्चित आधार प्रदान किया गया है अपितु पर्यावरण को धार्मिक आस्था से जोड़कर उसके संरक्षण एवं संवर्धन का मार्ग भी प्रशस्त किया गया है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को कभी भी जड़ पदार्थ मात्र नही माना गया। उन्हें हमेशा सजीव प्राकृतिक तत्व के रूप में सम्मान दिया गया। पर्यावरण से ही हमारी संस्कृति उपजी, पनपी और विकसित हुई, इसलिए आदिकाल से लेकर आधुनिक युग मे पर्यावरण के महत्व को समझते हुए पर्यावरण के प्रति अनुराग तथा उनकी रक्षा कर और उनके सहयोग से सुखी व संतुलित जीवन बिताने पर बल दिया गया है।

**मूल शब्दः** पर्यावरण, अजैविक, भूमण्डल, सौरमण्डल, उदारीकरण, वैश्वीकरण, भौतिक संस्कृति

## प्रस्तावना

वेदों में पर्यावरणीय संचेतना का विवेचना करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि पर्यावरण से अभिप्राय क्या है। पर्यावरण – परि+आ+वृ+लयुद्+सुं परित आवरणं पर्यावरणम्। अर्थात चारों ओर से जो घेरे हुए है वही पर्यावरण है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि मनुष्यादि प्राणियों तथा वृक्ष–वनस्पतियों के चारों और पृथ्वी, वायु, आकाश अग्नि, जल इन पंच महाभूतो एवं मनुष्य, पशु, पक्षी आदि विविध जीवों की अवस्थिति को व्यापक अर्थो में पर्यावरण कह सकते है । प्रकृति में सजीव एवं निर्जीव दोनों समाहित है। सजीव घटक में मनुष्य, जीव–जन्तु एवं समस्त प्राणी जगत आता है। समस्त जैविक एवं अजैविक तत्व प्रकृति में सहअस्तित्व एवं पारस्परिक अन्तरसम्बधों के आधार पर ही इस भूमण्डल के पर्यावरण का निर्माण करते है। मानव सहित सभी जीव इसी पर्यावरण की उपज है । मानव इस सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है जो पर्यावरण के रहस्यों को सबसे अधिक समझ पाया है। मानव की समस्त अनुक्रियायें तथा आधारभूत आवश्यकताएं, प्रमुख उद्यम, सामाजिक आवश्यकताऐं, उच्चस्तरीय आवश्यकताऐं एवं सौरमण्डलीय क्रियाकलाप आदि का सीधा सम्बध पर्यावरण से है। मानव एवं पर्यावरण का परस्पर घनिष्ठ सम्बध है। भूमि, वायु, वर्षा, वनस्पति, पेड़–पौधों, वन्य–जीव, सूर्य की रोशनी, पर्वत, नदी, तालाब, समुन्द्र, पशु–पक्षी, मनुष्य, कीटाणु आदि सभी मिलकर पर्यावरण की संरचना करते है। प्रकृति में इन सबकी मात्रा ओर संरचना इस प्रकार व्यवस्थित एवं नियन्त्रित है कि पृथ्वी पर एक सन्तुलित जीवन चक्र लाखों वर्षो से चल रहा है। प्रकृति और मानव के बीच एक मुलभूत व्यवस्था, एकता, समता और नियमबद्धता के कारण उनमें पारस्परिक निर्भरता देखने को मिलती है। मानव और प्रकृति का यह शाश्वत सम्बध है। मानव प्रकृति को और प्रकृति मानव को प्रभावित करती है। पर्यावरण के प्रति जागरूकता वर्तमान की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रकट हो गई है। वर्तमान समय में पर्यावरण का संकट आधुनिक औद्योगिक युग की देन है। मानव की बढ़ती हुयी स्वार्थपरता एवं भोग लिप्सा के कारण प्राकृतिक संसाधनों कर अन्धाधुन्ध दोहन हो रहा है। वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा बाजारीकरण व भौतिक दिखावे के नाम पर प्राकृतिक संसाधनो का सर्वथा विनाश किया जा रहा है। जिसका प्रत्यक्ष परिणाम ग्लोबल वार्मिग के रूप में दिखाई दे रहा है। वस्तुतः यह मानव की धृष्टता ही है जो स्वार्थपरक होकर जीवनदायिनी प्रकृति का शोषण कर रहा है। आज हमें पुनः अपने ऋषियों मुनियों एवं पूर्वजो के आचरण का एवं प्राचीन परम्परा का अनुकरण करना है जैसे स्वामी दयानन्द सरस्वती जी कथन था "वेदो की ओर लौटो" वो आज हमारी संस्कृति की अक्षुण्य परम्परा को जीवित रखने के लिए अति अनिवार्य आवश्यकता बन गई है अर्थात् जिस प्रकार वेदों में इत्यादि के द्वारा प्यांवरण के सभी घटकों तथा पर्यावरण प्रदूषण के निवारण की बात कही गयी है उससे यह स्पष्ट है वेद हमारे पथ प्रदर्शक ही नही वरन् भाग्य विधाता है। वेद के अनुकरण मात्र से ही वैदिक जयघोष सार्थक होगा – ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'' वेद में पर्यावरण की शुद्धता के लिये कहा गया है–''यत् ते भूमि विश्वनामि क्षिप्रं तदपि राहतु।'' पर्यावरण समस्या के समाधान में वैदिक वाड्मय अद्वितीय है। प्रकृति और मानव का मानवीय सम्बन्ध अप्रतिम है। वस्तुतः प्रकृति के प्रति सघन आत्मीयता एवं अगाध श्रद्धा अनादिकाल से मानव को प्रकृति प्रेमी बनाती है मनुष्य एवं प्रकृति के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध वैदिक मनीषियों की दृष्टि से अनुकरणीय है। वेदों में अग्नि, वायु, आकाश,, जल तथा पृथ्वी इन पंचमहाभूतों को प्रत्यक्ष देवता माना

गया है एवम अनेक सूक्तों के माध्यम से इनकी स्तुति की गयी है। ''नमो वृक्षेभ्यः'' ''वृक्षाणां पतये नमः'' ''ओषधीनां पतये नमः'' ''वनानां पतये नमः'' वैदिक प्रार्थनाओं में यर्जुवेद में प्रार्थना है– ''ओम द्यौः शान्तिरन्तक्षि शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शन्तिरोषधयः शान्तिर्ववस्पतयः शान्तिर्विश्वदेवोः शान्ति ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्ति : शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।''

अर्थात मेरे लिए धुलोक अन्तरिक्षलोक एवं पृथ्वी सुख शान्ति दायक हो, जल औषधियॉ और वनस्पतियॉ शान्ति देने वाली हो, समस्त देवता ब्रह्म और सब कुछ शान्ति प्रद हो। शान्ति विश्व और सर्वत्र फैली हुई है, वह मुझे प्राप्त हो। मै बराबर शान्ति का अनुभव करूँ। भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता रही है कि जो कोई भी हमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपे देता है जो हमारे लिये जीवानोपयोगी है तो वह हमारे लिये आदरयोग्य एवं देवतातुल्य है। यह सृष्टि भी बहुत कुछ देती है और बदले में कुछ नही लेती इसलिये यह हमारें लिये आदरणीय एवं देवतातुल्य है। वेदों में पर्यावरण के व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक ढ़ग से उसके व्यष्टिगत एवं समष्टिगत सभी प्रकार पर्यावरणों की संरक्षा और दूषित होने पर सुधार करने की विधि और प्रेरणायों दी गयी है। ऋग्वेद में पर्यावरण से सम्बधित विभिन्न प्राकृतिक तत्वों का मानवीय संवेदना के धरातल पर विविध रूपों में वर्णन किया गया है। तथा उन्हें हमारी धार्मिक भावनाओं के साथ जोड़ कर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से उनके सरंक्षण एवं संवर्धन को मानवीय कर्तव्य के रूप में उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में लिखा है कि ''द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादिति स्वसा। अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठेतेलयता सु कम्।।'' अर्थात् आकाश को पिता, पृथ्वी को माता, चन्द्रमा को भाई ,तथा अखण्ड पृथ्वी को बहन तुल्य प्रेम एवं सौहार्द्र देना चाहिए। यदि पृथ्वी के विभिन्न घटको को हम आदरभाव दे और उन्हे अपने जीवन का अभिन्न अंग मानकर उन्हें नष्ट ना होने दे तो वह हमारें लिये वरदान सिद्ध होगें। ''ऋतेन ऋतं नियतमीक आ गोरामा सचा मधुयतयक्वमग्ने। कृष्णा सती रूश्ता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय।।''अर्थात प्रकृति के शाश्वत नियमों को आदर करो, वे बडी मधुरता से जीवन में सहायक होते हैं। वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति का विकास प्रकृति की गोद में हुआ है। वेदों में पर्यावरण संरक्षण के लिये वैज्ञानिक उपाय अपनाया है। जिसका प्रत्यक्षतः प्रभाव हमारें जीवन में दृष्टिगत है। वैदिक मनिषियों नें सर्वदा पर्यावरण प्रदूषणमुक्त धरा कल्पना की है। वेदों में पर्यावरणीय संचेतना की बात है उनमें स्थलीय पर्यावरण,जलीय पर्यावरण,एवं वायु पर्यावरणों के संरक्षण एवं उसके दूषित होने पर सुधार करने के विधि और प्रेरणायें दी गयी है। स्थलीय पर्यावरण के अर्न्तगत पृथ्वी में विद्यमान , पृथ्वी से उपजने वाली और पृथ्वी की विकारभूत सभी वस्तुएं का संरक्षण एवं शोधन आवश्यक है। समस्त मानव प्राणियों का आधार यह पृथ्वी ही है, उसी की गोद में पलबढ़ कर सभी अपना जीवन निर्वाह करते है। हमें जीवन में जो कुछ भी उपलब्ध होता है वह सब पृथ्वी की कृपा से होता है। ऋग्वेद के पृथ्वी सूक्त में मानव एवं पृथ्वी को एक स्नेह सूत्र में बंधे होने की व्याख्या की गयी है। औषधी ,वनस्पति ,और वृक्षों के सरक्षण तथा संवर्धन के लिये वेदो में कहा गया है कि ''आयो वाता औषधय स्तान्येकस्मिन् भुवन अर्पितानी ।'' अर्थात जल, वायु, तथा औषधियॉ इस भूमंडल में सृष्टिकर्ता ने इस लिए उत्पन्न किये हैं कि इनसे मनुष्य आदि समस्त जीव–जन्तुओं को सुख और शान्ति प्राप्त हो। वन और वृक्षों के महत्व को देखते हुए कहा गया है– ''वनस्पति वन आस्थापयध्वम्।। '' अर्थात वृक्षों के समूह रूप जो वन हैं उनमें वृक्ष वनस्पतियों को चारों ओर लगा–लगा कर बढ़ाओ। ऋग्वेद में तो यहाँ तक कहा गया है कि

''वनस्पतिं पवमान मध्वा समंग्धि षारया।
सहस्त्रावत्शं हरितं भ्राजमानं हिरण्ययम्।।''

अर्थात संसार को पवित्र करने वाले परमात्मा वनस्पति के मधु अर्थात वर्षा की धारा से संयूक्त कर इतना बढ़ाओं कि वह हजारों कलियो के रूप में खिल उठे और उसके चमकीले सुवर्णमय आभा लिये हरे पत्ते चारों और अपनी शोभा बिखर डालें। ऋग्वेद के दशवें मण्डल का 'औषधीययुक्त तथा 'अरण्यानी सूक्त' और 'अथर्ववेद' मे अनेक प्रकार के औषधीय तथा वनों के गुणों और उपयोगिता के वर्णन मिलते है। पृथ्वी में ईवरर द्वारा उत्पादित ये औषधियॉ जीवनदायनी बलदायनी,रोगनाशक और आयुवर्धक है। इनकी इन विंषताओं के कारण वेदो में हरे– भरे वृक्षों तथा उसके रक्षको को विशेष आदर भावना की प्रेरणा दी गयी है।

''नमों वृक्षेभ्यो हरिकेशेम्य्।'' अर्थात हरे भरे वृक्षों के लिए सत्कार भाव हो। ''वनानां पतेय नमः'' अर्थात औषधियों के रक्षक के लिए नमस्कार है। वेदों में वृक्षों को ना काटने की बात कही गयी है। 'मापो औषधीहिसी' न जल को और न ही औषधीयों को हानि पहुँचाओ ।

मनुष्य आदि प्राणियों सभी प्रकार के वनस्पति पेड़ पौधों तथा घासों के लिए पृथ्वी में विभिन्न जल स्र्रोतों में प्रर्याप्त मात्रा में जल और साथ ही समय–समय पर आकाश से बरसने वाले जल का होना बहुत आवश्यक है। जल के बिना सभी जीव जन्तुओं, प्राणियों का जीवित रहना संभव नहीं है। इसलिए कहा गया है कि जल ही जीवन है। इस जल को बनाए रखने और नष्ट न होने देने तथा उसके शुद्धिकरण का हमेशा ध्यान रखने के सम्बन्ध में वेदो में बहुत कुछ कहा गया है। ''पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वती प्रदिशः सन्तु मह्यम्।।'' अर्थात हे ईश्वर आपने पृथ्वी में, अंतरिक्ष में, द्युलोक में तथा औषधियों में जल धारण किया हुआ है। आपकी श्पा से ये दशों दिशायें मेरे लिए सदा सजल और सरस रहें। जल के महत्व का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि– ''आतत्त इंद्रायवः पनंताभि यऊर्व गोमन्त्तं तितृत्सान। सश्त्स्वं ? ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन।।'' इस धरती पर अन्न, वनस्पति तथा जैविक प्रक्रिया तभी संभव हो सकती है जब वर्षा हो, इसलिए भूमि के हरा भरा बने रहने के लिए इंद्रा कि स्तुति कि गयी है । सदा जल से परिपूर्ण नदियां एवं अन्य जल स्रोत इस पृथ्वी को निरन्तर सींचते रहते हैं और मनुष्यादि प्राणियों को पेय जल उपलब्ध कराते हैं । पतित पावनी गंगा, यमुना, सरस्वती आदि नदियों के सम्बन्ध में यह कहा गया है– ''इमं मे ग्ड्गे यमुने सरस्वति शतुद्रि स्तोमे मे सचतापरुष्णयः। आसिक्न्या मरुदृधे वितस्तयार्जीकीये श्रृवुह्ययासुषोमय।।'' अर्थात हे गंगा, यमुना, सरस्वती, पुरुष्णी के साथ शतुद्धि, मेरे इन स्त्रोतों को स्वीकार करो तथा असि की कन्या व् मरुश्धा वितस्ता के साथ मेरी स्तुति को सुनो । पर्वतो और नदियों, भूमि और जल मे घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। वेदो मे जल को मूल तत्व माना गया है । ऋग्वेद मे यह कहा गया है कि जल न संत् था, न असत् जब न पृथ्वी थी और न आकाश, उस समय भी जल विद्यमान था। ईश्वर ने सर्वप्रथम जल को जन्म देकर उसको नार की संज्ञा दी और उसमे अपना बीज छोड़ दिया जो नारायण कहलाता है। वस्तुतः जल चेतना का कारण भी है जल मे औषधि और अमृत तत्व विद्यमान रहता है। ''अप्स्वंतरमृत्म'' जल के सम्बन्ध मे दो बातें जानना बहुत महत्वपूर्ण है। पहली यह कि जल प्रर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध रहे, जिससे कि हमारे भोजन– पान, स्नान, तथा क्रियादि कार्यो मे उसको प्रयोग मे ला सकें। दूसरी यह कि जल शुद्ध और साफ हो, अशुद्ध य मलीन नहीं। वेदों मे कहा गया है –''शुद्धा न आपस्तवें क्षरन्तु यो नः सेदुर्प्रिये तं नि दध्मः। पवित्रेण पृथिवी मोत्युनगमि।।'' ''शं नो देवी रभिष्टये आपो भवन्तु पीतये। शयोरभि स्त्रवत्तु नः।।'' अर्थात् हे पृथ्वी माता आपके झरने से हमारे इस शरीर के लिए शुद्ध जल मिले जो दुःखदायक कर्म हैं उन्हें अप्रिय एवं अनुचित जानकार हम त्याग दें तथा पवित्र आचरण से मै अपने को पवित्र करता हूँ। दिव्य गुण वाले जल

हमारे लिए कल्याणकारी हों उनका पान करते हुए हमे अभीष्ठ आनंद और शांति प्राप्त हो, जलपान एवं स्नान करते हुए वे हमें तृप्त एवं आरोग्य प्रदान करें। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि वेदों मे अधिक से अधिक जल स्रोतों को बचाए रखने, उन्हें नष्ट न होने देने तथा उनके शुद्धिकरण कि बात कही गयी है।

पर्यावरण के सभी अंग– उपांग हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं। उनमे से किसी एक के अभाव में भी हमारा जीवन चल नहीं सकता। इसलिए वेदों मे वायु की शुद्धता पर भी मनुष्य का ध्यान आकृष्ट किया है– ''शन्नो वातः पावता शन्नः सत्पतु सूर्यः। शनः करिक्रदद् देवः पर्जन्यो अभी वर्षतु ।।'' अर्थात् हमारे लिए वायु कल्याणकारी होकर प्रवाहित हो, सूर्य कल्याणकारी बनकर तपे, तथा गरजते हुए मेघ कल्याणकारी वर्षा करें । इसी प्रकार –

''आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः। त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दुत ईयसे ।।'' अर्थात सुन्दर शीतल मंद सुगंध वायु हमें आरोग्य प्रदान करे और जो दुर्गन्धादि दोष हैं उन्हें दूर करे। हे वायु तू सर्व औषधि वाला है और दिव्य गुणों के दूत के समान शरीर के भीतर बहार गति करता है। वायु को औषधि गुणों से युक्त मान गया है। वायु के बिना एक पल भी जीवित रहना मुश्किल है। इस कारण वेदों मे वायु को न केवल देवता तुल्य माना है वरन जीवनदाता, मित्र, भाई व पालनकर्ता भी माना है। ''उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा स नो जीवातवे शधि।।'' अर्थात वायु हमारा पिता, भाई, सखा आदि सब कुछ है वह हमें जीवन के योग्य बनावे। ''याददो वात ते गृहे ऽ मृतस्य निधिर्हितः। ततो नो देहि जीवसे।।'' अर्थात हे वायु देवता तेरे घर मे जो यह अमृत का कोश रखा है उसमें से हमें जीवन के लिए अमृत प्रदान कर। वेदों के अनुसार घरों की अशुद्ध वायु को बहार निकलकर उसके स्थान मे शुद्ध वायु का प्रवेश करने का उपाय यज्ञ से बढ़कर दूसरा नहीं है।

## निष्कर्ष

वेदों में यह घोषणा की मनुष्य अपने प्रयत्न से वायु, जल तथा औषधी वनस्पति को इतना शुद्ध रखे कि ये माधुर्य की धारा बहाया करे ओर उनके संसर्ग में रहने वाले मनुष्यादि, समस्त जीव–जन्तु सुख और शान्ति का अनुभव करे। वेदों में वृक्ष को प्राकृतिक सन्तुलन बनाये रखने वाला बताया गया है। ऋक्–यजु साम एवम् अथर्व इन चारो वेदों में पर्यावरण के विभिन्न तत्वों के विषय में चिन्तन, मनन नितान्त तर्क संगत है। वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति का विकास प्रकृति की गोद में हुआ है। वेदों ने पर्यावरण संरक्षण के लिए मनोवैज्ञानिक उपाय अपनाया जिसका प्रत्यक्षतः प्रभाव हमारे जीवन में दृष्टिगत है। वैदिक मनीषियों ने सर्वदा पर्यावरण प्रदूषण मुक्त धरा की कल्पना की है। समस्त प्राकृतिक शक्तियों की महिमा में मुक्तकंठ से स्तुति की गई जहाँ प्रत्येक प्राणी का अनुभव आनन्ददायी होता है। जैसे सम्पूर्ण वायुमंडल मधु की वर्षा कर रहा है धु लोक सूर्य–चन्द्र, दिन रात सभी अमृतमय हैं।

नदियाँ वनस्पतियाँ और औषधियाँ हमारे लिये जीवनदायी है। ऋषियों ने तो प्रकृति के सम्मान में यहाँ तक स्तुति की है– ''माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।''

भूमि को माता के तुल्य संरक्षण करने का उपदेश दिया है इस जीवन जगत के लिए पर्यावरण की रक्षा में वायु की स्वच्छता को अनिवार्य माना गया है। बिना प्राण वायु (ऑक्सीजन) के क्षण भर भी जीवन की कल्पना नही की जा सकती। इसलिये वायु की शुद्धि के लिए यर्जुवेद में इस प्रकार कहा गया है। ''तनूनपादसरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवःपथो अनुक्तु मध्वा धृतेन।''

वैदिक अग्निहोत्र के द्वारा होता हैं शतपथ ब्रहाण में यज्ञ को प्रजा का पालक तथा रक्षक बताते हुए गए कहा गया हैः– अग्नि से धूम धूम मेध और मेघो से वृष्टि होती है। ''अग्नेर्वैधूमो जायते धूमाददभ्रमाद् वृष्टि''

**अतः** वायु की शुद्धि सर्वोत्कृष्ट कार्य, यज्ञ विधान है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में पर्यावरण की शुद्धि का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पर्यावरण शुद्ध करता है। वहाँ मनुष्य एवं सभी पशु –पक्षी सुखपूर्वक जीवन यापन करते है।

''सर्वो वै तत्र जीवाति गौरश्वः पुरूषः यत्रेद
ब्रह्मक्रियते परिधिर्जीवनाय कम्।।''

अथर्ववेद में प्राकृतिक तत्वो की समस्या के समाधान मे इन तत्वो की शुद्धि पर बल दिया है।

''द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव।
पूत पवित्रणेवाज्यं आयः विश्वे शुन्धन्तु मैनसः।।''

ऋग्वेद का सम्पूर्ण नवम् मण्डल अर्थात सोम–सूक्त अरण्यानी सूक्त एवं अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त इत्यादि में पुनः एक ही सत्य से अवगत कराया गया है कि हमारी भूमि हरी–भरी रहे तथा स्वास्थ्यवर्धक औषधियों, वनस्पतियों से सदा परिपूर्ण रहे एवं हमारे लिए सुखदायिनी हो। प्रजापतिः पृथिनी विश्वगर्भाभाषा माषा रण्या न कृणोतु।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोष्णरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु।
यस्या वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवस्तष्ठन्ति वि'ववहाः
''पृथिवीं वि'वधायसं धृतामच्छावदामसि।।''

इस प्रकार हम देखते है कि पर्यावरण की रक्षा हेतु वायु, जल, ध्वनि, खाद्य पदार्थ इत्यादि को प्रदूषण मुक्त रखने के लिए वेदों में सरल व अनुकरणीय उपाय बताए गए है। वेदों में जीवन की पूर्णतः एवं सुखी स्वस्थ्य जीवन के लिये उपयोगी समस्त प्राकृतिक पदार्थो को जीवन के अभिन्न अंग के रूप में विकसित करते हुए उनकी मानवीय संदर्भो में उपयोगिता प्रदर्शित की गई है। प्राकृतिक पदार्थ हमारे वास्तविक मित्र एवं जीवनदाता है। उनके अस्तित्व के बिना जीवन की कल्पना करना मुश्किल है। अतः वह हमारे हर दृष्टि उपादेय होने कारण आदरणीय एवं वंदनीय है। प्रकृति एवं भारतीय संस्कृति का अद्वितीय सम्बद्ध रहा है। वृक्षों से ही हमारी संस्कृति उपजी पनपी ओर विकसित हुई है। वन हमारे कभी की जड़ पदार्थ नही थे। उन्हें हमेशा सजीव प्राकृतिक तत्वों के रूप में सम्मान दिया गया है। वेदों में प्राकृतिक शक्तियों देवीय स्वरूपा मानने और धार्मिक भावना के साथ जोड़ने का मुख्य उद्देश्य था कि हम उनके प्रति अनुराग एवं उनकी रक्षा करे और उनके सहयोग से स्वस्थ्य सुखी ओर सन्तुलित जीवन बिताये।

## सन्दर्भ


1. मिश्रा नित्यानदं (1998) पर्यावरण संस्कृति ,प्रदूषण एवं संरक्षण, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा।
2. शर्मा, आचार्य मुं'ीराम (1998) वैदिक द'ानः विचार और संस्कृति,यूनिवर्सिटी पब्लिके'ान,नई दिल्ली ।
3. मिश्रा हृदयनारायन (2006) पारिस्थिकी दर्शन शेखर प्रकाशन इलाहाबाद।
4. शुक्ला ,संजय कुमार एवं शुक्ला सुचेता (2010) दार्शनिक चिंतन के विविध आयाम, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली।
5. कुमार, शशि प्रभा (2010) भारतीय संस्कृति : विविध आयाम,विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली।
6. यादव,राजनन्दन( 2009) भारतीय द'ान में भौतिकवादी तत्व , कला प्रका'ान,वाराणसी।

7. राव, बी0 पी0 एव श्रीवास्तव वी0 के0 ( 2007) पर्यावरण एवं पारिसिथितिकी, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
8. यादव, वीरेन्द्र सिंह (2010) भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चिंतन के विविध आयाम, ओमेगा पब्लिकेशन्स ,दिल्ली।